The Academic
International Journal of Multidisciplinary Research

An Online Peer Reviewed / Refereed Journal
Volume 4 | Issue 10 | October 2026
ISSN: 2583-973X (Online), SJIF IF(2026): 5.6
Website: www.theacademic.in

# भारतीय ऋषि ज्ञानपरम्परा का समकालीन परिप्रेक्ष्य में दार्शनिक अध्ययन

**Dhaneshwar Dwivedi**

Research Scholar, Department of Sanskrit, H.N.B. Garhwal (A Central University), SRT Campus,Tehri Garhwal, Uttarakhand, Gmail ID: dhaneshdwivedi494@gmail.com

**Yashika Ranaa**

Research Scholar, Department of Home Science, H.N.B. Garhwal (A Central University), SRT Campus, Tehri Garhwal, Uttarakhand, Email ID: imyashirana@gmail.com

**DOI : https://doi.org/10.5281/zenodo.24491639**

**ARTICLE DETAILS**

**Research Paper**

**Received:** 20-10-2026

**Accepted:** 05-11-2026

**Published:** 20-11-2026

**Keywords:**

ऋषि ज्ञानपरम्परा, नैतिक शिक्षा, मानवीय मूल्य, उपनिषद् एवं गीता, योगदर्शन, नई शिक्षा नीति-2020

**ABSTRACT**

भारतीय संस्कृति का मूलाधार ऋषि परम्परा रही है। ऋषि परम्परा में शिक्षा का उद्देश्य केवल ज्ञानार्जन या जीविकोपार्जन न होकर मानव निर्माण एवं नैतिक चेतना का विकास रहा है। प्रस्तुत शोधपत्र में वैदिक साहित्य, उपनिषद्, श्रीमद्भगवद्गीता एवं योगदर्शन के सन्दर्भ में ऋषि ज्ञानपरम्परा में निहित नैतिक एवं दार्शनिक तत्त्वों का विश्लेषण किया गया है। ऋत, सत्य, धर्म, समन्वय, विश्वबन्धुत्व, निष्काम कर्म, आत्मसंयम तथा स्वाध्याय जैसी अवधारणाओं के माध्यम से यह स्पष्ट किया गया है कि ये मूल्य व्यक्ति के आन्तरिक विकास के साथ-साथ सामाजिक एवं पर्यावरणीय सन्तुलन का भी आधार हैं। विज्ञान एवं तकनीक की प्रगति के बावजूद आज की शिक्षा व्यवस्था उपभोक्तावाद, प्रतिस्पर्धा, मानसिक तनाव एवं नैतिक मूल्यों के क्षरण जैसी चुनौतियों से जूझ रही है। अध्ययन से निष्कर्ष निकलता है कि भारतीय ऋषि ज्ञानपरम्परा समकालीन शिक्षा को मूल्यपरक, मानवीय एवं संतुलित दिशा प्रदान करने में प्रासंगिक है तथा नई शिक्षा नीति 2020 की भावना के अनुरूप भी है।

## प्रस्तावना

Disclaimer: The opinions, interpretations, conclusions, recommendations, analyses, and statements expressed in this research article are solely those of the author(s) and do not reflect the views, policies, or positions of the Publisher, Chief Editor, Editors, Editorial Board, Reviewers, or their affiliated institutions. The author(s) are solely responsible for ensuring the originality, authenticity, and integrity of the manuscript and for ensuring that it is free from plagiarism, AI-generated content, copyright infringement, data falsification, and any other form of academic misconduct.

भारतीय संस्कृति का मूलाधार ऋषि परम्परा रही है। भारतीय ऋषियों ने मानव जीवन को केवल भौतिक अस्तित्व के रूप में न देखकर उसे नैतिक, आध्यात्मिक एवं सामाजिक चेतना से सम्पन्न माना गया है। इसी कारण भारतीय ज्ञानपरम्परा में शिक्षा का उद्देश्य मात्र ज्ञानार्जन अथवा जीविकोपार्जन नहीं है अपितु साथ ही मानव-निर्माण अर्थात् मानवीय मूल्यों को स्वीकार किया गया। वैदिक युग से ही भारतीय चिंतन में सत्य, धर्म, करुणा, संयम, सहिष्णुता तथा लोकमंगल जैसे मूल्यों को मानव जीवन का अनिवार्य आधार माना गया है। ऋषियों ने ज्ञान को आत्मानुभूति एवं सामाजिक उत्तरदायित्व से जोड़ा। उपनिषदों में ज्ञान का उद्देश्य आत्मबोध माना गया है, जबकि श्रीमद्भगवद्गीता में कर्म, नैतिकता एवं कर्तव्य का समन्वय प्रस्तुत किया गया है। बौद्ध एवं जैन दर्शन ने अहिंसा, करुणा तथा अपरिग्रह के माध्यम से नैतिक जीवन का आदर्श स्थापित किया। इस प्रकार भारतीय ज्ञानपरम्परा मानव के बाह्य एवं आन्तरिक दोनों पक्षों के संतुलित विकास की पक्षधर रही है। डॉ० सर्वपल्ली राधाकृष्णन के अनुसार भारतीय दर्शन का मूल उद्देश्य मानव को आत्मिक एवं नैतिक पूर्णता की ओर अग्रसर करना है। हमारी ऋषि ज्ञानपरम्परा में शिक्षा केवल बौद्धिक प्रशिक्षण ही नहीं, अपितु नैतिक चेतना का विकास भी है। वर्तमान वैश्विक परिदृश्य में विज्ञान एवं तकनीक की अभूतपूर्व प्रगति के पश्चात् भी मानव समाज अनेक नैतिक संकटों से जूझ रहा है। उपभोक्तावाद, हिंसा, असहिष्णुता, भ्रष्टाचार, मानसिक तनाव, पारिवारिक विघटन तथा पर्यावरणीय असंतुलन जैसी अनेकानेक समस्याएँ आधुनिक शिक्षा-व्यवस्था की सीमाओं को प्रकट करती हैं। शिक्षा आज अधिकाधिक व्यवसायोन्मुख एवं प्रतिस्पर्धात्मक होती जा रही है। इसी के परिणामस्वरूप नैतिक मूल्यों का क्षरण तीव्र गति से हो रहा है। नई शिक्षा नीति-2020 ने भी भारतीय ज्ञानपरम्परा, योग, मूल्य-शिक्षा एवं सांस्कृतिक चेतना को शिक्षा का महत्त्वपूर्ण अंग स्वीकार किया है। यह नीति स्पष्ट रूप से चरित्र-निर्माण, नैतिक विकास एवं समग्र व्यक्तित्व-निर्माण व मानवीय मूल्यों पर बल देती है। इस दृष्टि से भारतीय ऋषि ज्ञानपरम्परा का पुनर्पाठ आज की शिक्षा-व्यवस्था के लिए अत्यन्त आवश्यक हो जाता है। प्रस्तुत शोधपत्र का उद्देश्य भारतीय ऋषि-ज्ञानपरम्परा का समकालीन परिप्रेक्ष्य मैं प्राचीन ज्ञानपरम्परा में निहित नैतिक एवं दार्शनिक तत्वों का विश्लेषण करते हुए उनकी समकालीन शिक्षा में प्रासंगिकता को स्पष्ट करना है। इस अध्ययन में वैदिक साहित्य, उपनिषद्, श्रीमद्भगवद्गीता, योगदर्शन के सन्दर्भ में मानवीय मूल्यों एवं नैतिक शिक्षा की अवधारणा का शोधात्मक विवेचन किया गया है। साथ ही आधुनिक शिक्षा की चुनौतियों के सन्दर्भ में भारतीय नैतिक मूल्य परम्परा की उपादेयता को भी रेखांकित किया गया है।

**भारतीय ऋषि ज्ञानपरम्परा का दार्शनिक आधार**

भारतीय ऋषियों ने मानव जीवन को ब्रह्माण्डीय चेतना का अभिन्न अंग माना है। ऋषियों ने प्रतिपादित भी किया कि मनुष्य का वास्तविक विकास तभी सम्भव है, जब उसका जीवन सत्य, धर्म एवं नैतिक अनुशासन पर आधारित हो। वैदिक साहित्य में '**ऋत**' की अवधारणा भारतीय नैतिक दर्शन का मूलाधार है। ऋग्वेद में कहा भी गया है-

**ऋतस्य पन्था न तरन्ति दुष्कृतः। (ऋग्वेद 9/73/6)**

दुष्कर्मी व्यक्ति सत्य एवं ऋत के मार्ग को प्राप्त नहीं कर सकता। यहाँ **ऋत** केवल प्राकृतिक व्यवस्था का प्रतीक नहीं, बल्कि सार्वभौमिक नैतिक सत्य का दार्शनिक सिद्धान्त है। वैदिक ऋषियों के अनुसार सम्पूर्ण सृष्टि एक नैतिक व्यवस्था द्वारा संचालित होती है। मनुष्य का कर्तव्य उस व्यवस्था के अनुरूप आचरण करना है। आचार्य बलदेव उपाध्याय के अनुसार वैदिक **ऋत** की अवधारणा भारतीय संस्कृति में नैतिक विश्व-व्यवस्था का प्रतीक है। इससे स्पष्ट होता है कि भारतीय ज्ञानपरम्परा में नैतिकता केवल सामाजिक नियम नहीं, अपितु यह सार्वभौमिक सत्य का अंग है। '***धारणाद्धर्म इत्याहुः धर्मो धारयते प्रजाः। यत् स्याद्धारणसंयुक्तं स धर्म इति निश्चयः॥***' जो जीवन एवं समाज को धारण करे वही धर्म है। यहाँ धर्म का अर्थ किसी संकीर्ण सम्प्रदाय विशेष से नहीं, बल्कि नैतिक एवं सामाजिक व्यवस्था से है। मनुस्मृति में धर्म के दस लक्षण बताए गए हैं-

**धृतिः क्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः।**
**धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्मलक्षणम्॥** (मनुस्मृति-6/92)

इस श्लोक में धैर्य, क्षमा, संयम, शौच, सत्य, अक्रोध, अस्तेय, इन्द्रियनिग्रह एवं धी ये दस गुणों को धर्म का आधार माना गया है। यह स्पष्ट करता है कि हमारे ऋषियों ने नैतिकता को मानव व्यक्तित्व के आन्तरिक विकास से जोड़ा। हमारी ऋषि-परम्परा में सत्य को सर्वोच्च मूल्य माना गया। तैत्तिरीयोपनिषद् का प्रसिद्ध उपदेश-

**सत्यं वद। धर्मं चर।** (तै०उ०1/11)

भारतीय नैतिक दर्शन का यह मूल सूत्र है। यहाँ सत्य केवल भाषिक सत्य नहीं है, बल्कि जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में सत्यनिष्ठा एवं उत्तरदायित्व का प्रतीक है। '**धर्मं चर**' का तात्पर्य न्यायपूर्ण, संयमित एवं लोकहितकारी आचरण से है। समकालीन समाज में असत्य, भ्रष्टाचार, नैतिक पतन एवं स्वार्थपरता की बढ़ती प्रवृत्तियाँ यह संकेत देती हैं कि शिक्षा से मूल्यपरक चेतना क्रमशः समाप्त होती जा रही है। ऐसी स्थिति में हमारी प्राचीन ऋषि-ज्ञानपरम्परा शिक्षा को पुनः नैतिक एवं मानवीय दिशा प्रदान कर सकती है। भारतीय दर्शन की एक अन्य महत्त्वपूर्ण विशेषता उसका समन्वयवादी दृष्टिकोण है। ऋग्वेद का यह मन्त्र-

**एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्ति।** (ऋग्वेद-1/164/46)

यह प्रतिपादित करता है कि सत्य एक है, किन्तु विद्वान उसे विभिन्न रूपों में व्यक्त करते हैं। यह विचार भारतीय संस्कृति की सहिष्णुता, बहुलतावाद एवं वैचारिक उदारता का आधार है। आज जब विश्व धार्मिक असहिष्णुता, सांस्कृतिक संघर्ष एवं वैचारिक कट्टरता जैसी समस्याओं के कारण युद्ध में प्रवृत होकर जूझ रहा है, तब

वैदिक समन्वयवादी दृष्टि वैश्विक नैतिकता, वैश्विक शान्ति का एक प्रभावी मॉडल प्रस्तुत करती है। प्राचीन ऋषि ज्ञानपरम्परा में उपनिषदों का मुख्य उद्देश्य आत्मा, ब्रह्म तथा जगत् के सम्बन्ध का विवेचन करते हुए मानव को सत्य, आत्मानुशासन एवं नैतिक जीवन की ओर उन्मुख करना है। उपनिषदों में आत्मविद्या को मानवमुक्ति तथा नैतिक जीवन का मूलाधार स्वीकार किया गया है। बृहदारण्यकोपनिषद् में कहा गया है-

**आत्मा वा अरे द्रष्टव्यः श्रोतव्यो मन्तव्यो निदिध्यासितव्यः।** (बृहदारण्यकोपनिषद्-2/4/5)

आत्मा का दर्शन, श्रवण, मनन एवं अनुभूति आवश्यक है। यहाँ आत्मज्ञान को केवल आध्यात्मिक अनुभव न मानकर मानव जीवन की नैतिक चेतना का आधार स्वीकार किया गया है। प्राचीन ऋषियों का मानना था कि जब तक मनुष्य अपने वास्तविक स्वरूप को नहीं पहचानता, तब तक उसका आचरण पूर्णतः नैतिक नहीं हो सकता। तैत्तिरीयोपनिषद् में गुरु शिष्य को उपदेश देता है **सत्यं वद। धर्मं चर। स्वाध्यायान्मा प्रमदः।** यह उपदेश प्राचीन भारतीय नैतिक शिक्षा का मूल सूत्र कहा जा सकता है। '**सत्यं वद**' का तात्पर्य केवल असत्य का त्याग नहीं, बल्कि जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में सत्यनिष्ठा एवं ईमानदारी का पालन है। 'धर्मं चर' मनुष्य को न्यायपूर्ण एवं उत्तरदायित्वपूर्ण जीवन जीने की प्रेरणा देता है, जबकि '**स्वाध्यायान्मा प्रमदः**' आत्मचिन्तन एवं निरन्तर अध्ययन की महत्ता को प्रतिपादित करता है। समकालीन शिक्षा-व्यवस्था में ज्ञान का विस्तार तो हुआ है, किन्तु स्वाध्याय एवं आत्मचिन्तन की परम्परा क्षीण होती जा रही है। आधुनिक विद्यार्थी सूचना एवं तकनीकी संसाधनों से सम्पन्न होने के बावजूद मानसिक रूप से तनाव, असंतुलन एवं मूल्यहीनता का अनुभव कर रहा है। ऐसी स्थिति में उपनिषदों की आत्मविद्या शिक्षा को पुनः संतुलित एवं मानवीय दिशा प्रदान कर सकती है। उपनिषदों में सामाजिक एवं पारिवारिक नैतिकता को भी अत्यधिक महत्त्व दिया गया है-

**मातृदेवो भव। पितृदेवो भव।**

**आचार्यदेवो भव। अतिथिदेवो भव।** (तै०उ०)

यहाँ माता, पिता, गुरु एवं अतिथि के प्रति सम्मान को नैतिक जीवन का अनिवार्य अंग माना गया है। भारतीय संस्कृति में गुरु-शिष्य सम्बन्ध केवल ज्ञान के आदान-प्रदान तक ही सीमित नहीं था; अपितु वह नैतिक अनुशासन एवं चरित्र-निर्माण का माध्यम भी था। उपनिषदों में विश्वबन्धुत्व एवं सहअस्तित्व की भावना भी स्पष्ट रूप से व्यक्त हुई है। ईशावास्योपनिषद् का यह मन्त्र-

**ईशावास्यमिदं सर्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत्।** (ईशावास्योपनिषद्-1/1)

सम्पूर्ण जगत् में ईश्वर की उपस्थिति को स्वीकार करता है। यह दृष्टि मनुष्य को अहंकार, स्वार्थ एवं हिंसा से दूर ले जाकर समता एवं सहअस्तित्व की भावना को विकसित करती है। आज जब मानव समाज पर्यावरणीय संकट,

हिंसा एवं नैतिक विघटन जैसी समस्याओं से जूझ रहा है, तब उपनिषदों की यह समन्वयवादी एवं आध्यात्मिक दृष्टि वैश्विक नैतिकता के लिए अत्यन्त महत्त्वपूर्ण सिद्ध होती है। इस प्रकार उपनिषदों की आत्मविद्या केवल आध्यात्मिक साधना नहीं, बल्कि नैतिक शिक्षा एवं मानवीय चेतना का एक सशक्त आधार प्रस्तुत करती है। वैदिक ऋषियों ने मनुष्य को समाज, प्रकृति तथा ब्रह्माण्ड के साथ समन्वित सम्बन्ध स्थापित करने की प्रेरणा दी। इसीलिए वैदिक संस्कृति में ऋत, सत्य, यज्ञ, सहयोग तथा लोकमंगल जैसे सिद्धान्तों को मानव-मूल्यों का आधार स्वीकार किया गया। ऋग्वेद में सामूहिक चेतना एवं सामाजिक समन्वय का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण मन्त्र प्राप्त होता है-

**संगच्छध्वं संवदध्वं सं वो मनांसि जानताम्।**
**देवा भागं यथा पूर्वे संजानाना उपासते॥** (ऋग्वेद - 10.191)

यहाँ ऋषि के माध्यम से वेद कहता है साथ चलो, साथ विचार करो एवं अपने मन को एक बनाओ । ठीक उसी प्रकार जिस प्रकार प्राचीन देवता समन्वित होकर यज्ञ करते थे। यह मन्त्र भारतीय संस्कृति की सामूहिकता एवं सहअस्तित्व की भावना को स्पष्ट रूप से व्यक्त करता है। यहाँ '**संगच्छध्वम्**' केवल शारीरिक एकता का संकेत नहीं करता है, साथ ही यह मानसिक एवं नैतिक समन्वय का प्रतीक के रूप में भी हमें शिक्षा देता है। आचार्य बलदेव उपाध्याय के अनुसार वैदिक संस्कृति का मूल स्वर समन्वय एवं सहयोग है, जहाँ व्यक्ति का कल्याण समाज के कल्याण से पृथक नहीं माना गया है। इससे स्पष्ट होता है कि वैदिक शिक्षा का उद्देश्य केवल व्यक्तिगत सफलता नहीं है। यह सामूहिक उत्तरदायित्व एवं लोकमंगल की भावना को व्यक्त करता है। समकालीन शिक्षा-व्यवस्था में अत्यधिक प्रतिस्पर्धा एवं व्यक्तिवादी प्रवृत्तियों के कारण सहयोग एवं सहअस्तित्व की भावना क्षीण होती जा रही है। शिक्षण संस्थानों में नैतिक अनुशासन एवं सामाजिक संवेदनशीलता के स्थान पर केवल प्रदर्शन एवं उपलब्धि को महत्त्व दिया जा रहा है। ऐसी स्थिति में ऋग्वैदिक संगच्छध्वम् की अवधारणा शिक्षा को पुनः सामूहिकता एवं मानवीय चेतना की दिशा प्रदान कर सकती है। ऋग्वेद का एक अन्य मन्त्र मानव समाज में मानसिक एवं भावनात्मक एकता की स्थापना पर बल देता है-

**समानी व आकूतिः समाना हृदयानि वः।**
**समानमस्तु वो मनो यथा वः सुसहासति॥** (ऋग्वेद 10/191/04)

यह मन्त्र समान संकल्प, समान भावनाओं एवं समान मानसिक दृष्टि की आवश्यकता को हमें बताता है। वैदिक ऋषियों का विचार आधुनिक लोकतान्त्रिक एवं बहुसांस्कृतिक समाज के लिए अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। वर्तमान समय में समाज में जातीय संघर्ष, धार्मिक असहिष्णुता एवं सांस्कृतिक विभाजन जैसी समस्याएँ वैश्विक समाज को प्रभावित कर रही हैं। ऐसे समय में वैदिक साहित्य की यह समन्वयवादी दृष्टि वैश्विक नैतिकता एवं सामाजिक

सद्भाव का प्रभावी आधार प्रस्तुत करती है। संस्कृत साहित्य में विश्वबन्धुत्व की भावना भी विशेष रूप से प्रतिपादित हुई है।

**अयं निजः परो वेति गणना लघुचेतसाम्।**
**उदारचरितानां तु वसुधैव कुटुम्बकम्॥** (हितोपदेश-मित्रलाभ-1/17)

भारतीय संस्कृति की सार्वभौमिक नैतिक दृष्टि का प्रतिनिधित्व करता है। यहाँ सम्पूर्ण विश्व को एक परिवार के रूप में देखने की भावना व्यक्त की गई है। यह विचार आधुनिक मानवतावाद एवं वैश्विक नागरिकता की अवधारणा से गहरे रूप में सम्बन्धित है। अथर्ववेद में पृथ्वी को माता कहा गया है-

**माता भूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्याः।** (अथर्ववेद-12/1/12)

प्राचीन वैदिक मन्त्रों के दृष्टा ऋषि मानव एवं प्रकृति के पारस्परिक सम्बन्ध को अत्यन्त सूक्ष्मता से व्यक्त करते हैं। ऋषियों ने प्रकृति का शोषण नहीं का मार्ग प्रशस्त नहीं किया अपितु उन्होंने तब ही हमें प्रकृति के संरक्षण एवं सहअस्तित्व का मार्ग प्रशस्त करते हुए हमारे जीवन में प्रकृति की उपयोगिता बताई है। आज हम पर्यावरण एवं मृदादि प्रदूषण के निवारण के लिए अनेक प्रयास कर रहे हैं। ऐसे में पर्यावरणीय संकट एवं जलवायु परिवर्तन जैसी समस्याओं को देखते हुए यह वैदिक दृष्टि अत्यन्त प्रासंगिक प्रतीत होती है। गीता भारतीय दर्शन, नैतिकता एवं आध्यात्मिक जीवन का ऐसा समन्वित ग्रन्थ है, जिसमें मानव-जीवन की व्यावहारिक समस्याओं का दार्शनिक समाधान प्रस्तुत किया गया है। महाभारत के भीषण युद्धक्षेत्र में अर्जुन के मोह, विषाद एवं नैतिक द्वन्द्व को दूर करते हुए भगवान श्रीकृष्ण ने कर्म, ज्ञान एवं भक्ति का जो समन्वित सिद्धान्त प्रस्तुत किया, वही आगे चलकर भारतीय नैतिक दर्शन का आधार बना। गीता का मूल उद्देश्य मानव को कर्तव्य, आत्मसंयम एवं निष्काम कर्म की शिक्षा देना है। गीता में कहा गया है-

**कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।**
**मा कर्मफलहेतुर्भूर्मा ते सङ्गोऽस्त्वकर्मणि॥** (श्रीमद्भगवद्गीता-2/47)

श्रीकृष्ण श्रीमद्भगवद्गीता के सांख्ययोग अध्याय में अर्जुन के माध्यम से हमें उपदेश देते हैं कि मनुष्य का अधिकार केवल कर्म करने में है। उसके फल में नहीं है। यहाँ गीता निष्काम कर्म का सिद्धान्त प्रस्तुत करती है, जिसका तात्पर्य यह है कि मनुष्य को स्वार्थ एवं फलाकांक्षा से मुक्त होकर अपने कर्तव्यों का पालन करना चाहिए। लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक ने गीतारहस्य में गीता के कर्मयोग को **सक्रिय नैतिक जीवन का आदर्श** कहा है। उनके अनुसार गीता पलायन नहीं, बल्कि उत्तरदायित्वपूर्ण कर्म की प्रेरणा देती है। यह दृष्टि आधुनिक शिक्षा के लिए अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है, क्योंकि वर्तमान समय में विद्यार्थी सफलता एवं परिणाम के अत्यधिक दबाव के कारण मानसिक तनाव

एवं असंतुलन का अनुभव करते हैं। गीता का निष्काम कर्म सिद्धान्त शिक्षा को पुनः संतुलित एवं नैतिक दिशा प्रदान करता है। गीता में आत्मसंयम एवं इन्द्रियनिग्रह को भी नैतिक जीवन का आवश्यक तत्व माना गया है-

**उद्धरेदात्मनाऽत्मानं नात्मानमवसादयेत्।**

**आत्मैव ह्यात्मनो बन्धुरात्मैव रिपुरात्मनः॥** (श्रीमद्भगवद्गीता-6/5)

यहाँ आत्मानुशासन को व्यक्ति के उत्थान का आधार बताया गया है। भारतीय ऋषियों के अनुसार मनुष्य का सबसे बड़ा मित्र एवं शत्रु उसका अपना मन है। यदि मन संयमित है तो व्यक्ति नैतिक एवं संतुलित जीवन जी सकता है। यदि मन असंयमित हो जाए तो वह पतन का कारण बनता है। समकालीन शिक्षा-व्यवस्था में नैतिक अनुशासन एवं आत्मसंयम का संकट स्पष्ट दिखाई देता है। तकनीकी प्रगति एवं भौतिक उपलब्धियों के पश्चात भी युवाओं में मानसिक तनाव, आक्रोश एवं दिशाहीनता की समस्या बढ़ रही है। ऐसी स्थिति में गीता का आत्मसंयम सिद्धान्त अत्यन्त प्रासंगिक प्रतीत होता है। गीता में समत्वभाव को भी श्रेष्ठ नैतिक गुण माना गया है।

**समत्वं योग उच्यते।** (श्रीमद्भगवद्गीता-2/48)

सुख-दुःख, लाभ-हानि एवं जय-पराजय में समान भाव रखना ही योग है। यह शिक्षा मनुष्य को मानसिक संतुलन एवं सहिष्णुता की प्रेरणा देती है। वर्तमान प्रतिस्पर्धात्मक समाज में जहाँ व्यक्ति छोटी-छोटी असफलताओं से निराश एवं तनावग्रस्त हो जाता है, वहाँ गीता का समत्वयोग मानसिक स्वास्थ्य एवं नैतिक स्थिरता का प्रभावी आधार प्रस्तुत करता है। डॉ० सर्वपल्ली राधाकृष्णन के अनुसार गीता '**नैतिकता एवं आध्यात्मिकता का व्यावहारिक समन्वय**' प्रस्तुत करती है। गीता का धर्म किसी संकीर्ण धार्मिक अवधारणा तक सीमित नहीं, बल्कि सार्वभौमिक नैतिक चेतना का प्रतीक है। यही कारण है कि गीता का प्रभाव केवल भारतीय समाज तक सीमित न रहकर सम्पूर्ण विश्व में दिखाई देता है। गीता में लोकसंग्रह की भावना को भी विशेष महत्त्व दिया गया है-

**यद्यदाचरति श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरो जनः।** (श्रीमद्भगवद्गीता-3/21)

यहाँ श्रेष्ठ व्यक्तियों के आचरण को समाज के लिए आदर्श माना गया है। यह सिद्धान्त शिक्षा के क्षेत्र में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है, क्योंकि शिक्षक एवं शिक्षण संस्थान केवल ज्ञान देने वाले माध्यम नहीं, बल्कि नैतिक आदर्श प्रस्तुत करने वाले केन्द्र भी होते हैं। नई शिक्षा नीति-2020 में भी चरित्र-निर्माण, नैतिक चेतना एवं समग्र व्यक्तित्व-विकास पर विशेष बल दिया गया है। गीता का कर्मयोग, आत्मसंयम एवं लोकमंगल का सिद्धान्त इस उद्देश्य की पूर्ति में अत्यन्त सहायक सिद्ध हो सकता है। महर्षि पतञ्जलि द्वारा प्रतिपादित योगदर्शन केवल शारीरिक व्यायाम की पद्धति नहीं, बल्कि मानव-जीवन के मानसिक, नैतिक एवं आध्यात्मिक परिष्कार का समन्वित विज्ञान है।

योगदर्शन का मुख्य उद्देश्य चित्तवृत्तियों का निरोध कर मनुष्य को आत्मानुशासन एवं आत्मबोध की दिशा में अग्रसर करना है। पतञ्जलि योगसूत्र में कहा गया है-

**योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः।** (योगसूत्र-1/2)

महर्षि पतञ्जलि कहते हैं चित्त की वृत्तियों का निरोध ही योग है। यहाँ योग का तात्पर्य केवल शरीर-साधना नहीं, बल्कि मानसिक संतुलन एवं नैतिक अनुशासन की स्थापना से है। भारतीय ऋषियों के अनुसार असंयमित मन ही हिंसा, लोभ, क्रोध एवं नैतिक पतन का कारण बनता है; अतः मन का संयम नैतिक जीवन का मूलाधार है। पतञ्जलि ने यम एवं नियम को योग का प्रथम चरण स्वीकार किया है-

**अहिंसासत्यास्तेयब्रह्मचर्यापरिग्रहा यमाः।** (योगसूत्र-2/30)

यहाँ ऋषि अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य एवं अपरिग्रह को सार्वभौमिक को नैतिक मूल्य मानते हैं। ये केवल धार्मिक नियम नहीं, बल्कि सामाजिक एवं मानवीय अनुशासन के आधार हैं। स्वामी विवेकानन्द के अनुसार योग '**मनुष्य की आन्तरिक शक्तियों के संतुलित विकास का विज्ञान**' है। उनके अनुसार नैतिकता का वास्तविक आधार बाह्य भय नहीं, बल्कि आत्मसंयम है। यह दृष्टिकोण समकालीन शिक्षा के लिए अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है, क्योंकि आधुनिक शिक्षा में बाह्य अनुशासन तो दिखाई देता है, किन्तु आत्मानुशासन एवं मानसिक संतुलन का अभाव बढ़ता जा रहा है। वर्तमान समय में युवाओं में तनाव, अवसाद, आक्रोश एवं मानसिक असंतुलन की समस्याएँ तीव्र गति से बढ़ रही हैं। प्रतिस्पर्धात्मक जीवनशैली एवं उपभोक्तावादी संस्कृति ने व्यक्ति को मानसिक रूप से अस्थिर बना दिया है। ऐसी स्थिति में योगदर्शन शिक्षा को पुनः संतुलन एवं आत्मनियंत्रण की दिशा प्रदान कर सकता है। योगदर्शन में नियमों का भी विशेष महत्त्व है-

**शौचसन्तोषतपःस्वाध्यायेश्वरप्रणिधानानि नियमाः।** (योगसूत्र -2/32)

शौच, सन्तोष, तप, स्वाध्याय एवं ईश्वर-प्रणिधान मनुष्य के आन्तरिक विकास के साधन हैं। विशेषतः 'स्वाध्याय' आत्मचिन्तन एवं सतत् अध्ययन की परम्परा को व्यक्त करता है, जो भारतीय ज्ञानपरम्परा का मूल तत्व है। नई शिक्षा नीति-2020 में भी योग, ध्यान एवं मूल्य-आधारित शिक्षा को विशेष महत्त्व दिया गया है। इससे स्पष्ट होता है कि आधुनिक शिक्षा-व्यवस्था में भारतीय योगपरम्परा की उपयोगिता पुनः स्वीकार की जा रही है।

समकालीन शिक्षा-व्यवस्था विज्ञान एवं तकनीक की दृष्टि से अत्यधिक विकसित होने के बाद भी नैतिक संकटों से घिरी हुई है। आधुनिक शिक्षा का मुख्य लक्ष्य रोजगार एवं आर्थिक सफलता तक सीमित होता जा रहा है, जिसके परिणामस्वरूप चरित्र-निर्माण एवं नैतिक चेतना की उपेक्षा हो रही है। उपभोक्तावाद, प्रतिस्पर्धा, हिंसा, भ्रष्टाचार एवं मानसिक तनाव जैसी समस्याएँ इसी मूल्यहीन शिक्षा की देन हैं। महात्मा गाँधी ने शिक्षा का उद्देश्य

स्पष्ट करते हुए कहा था कि '**शिक्षा का वास्तविक उद्देश्य चरित्र-निर्माण है।**' यह कथन भारतीय शिक्षा-दर्शन की मूल भावना को व्यक्त करता है। भारतीय ऋषि-परम्परा में शिक्षा का उद्देश्य केवल ज्ञानार्जन नहीं, बल्कि व्यक्ति के भीतर सत्य, करुणा, संयम एवं उत्तरदायित्व जैसे मूल्यों का विकास था। आज शिक्षा में नैतिकता के अभाव के कारण विद्यार्थियों में असहिष्णुता, स्वार्थपरता एवं मानसिक असंतुलन बढ़ता जा रहा है। शिक्षण संस्थान ज्ञान के केन्द्र तो बन रहे हैं, किन्तु संस्कार एवं संवेदनशीलता के केन्द्र नहीं बन पा रहे। ऐसी स्थिति में भारतीय ज्ञानपरम्परा शिक्षा को पुनः मानवीय एवं मूल्यपरक दिशा प्रदान कर सकती है। भारतीय चिंतन **सा विद्या या विमुक्तये** की अवधारणा प्रस्तुत करता है-

**सा विद्या या विमुक्तये।** (विष्णुपुराण-1/19/41)

वही विद्या है जो मनुष्य को अज्ञान, भय एवं नैतिक पतन से मुक्त करे। यह शिक्षा-दृष्टि आधुनिक उपयोगितावादी शिक्षा से भिन्न है। यहाँ शिक्षा का लक्ष्य केवल आर्थिक सफलता नहीं, बल्कि मानसिक एवं नैतिक मुक्ति है।

भारतीय ऋषि-ज्ञानपरम्परा आज भी वैश्विक समाज के लिए अत्यन्त प्रासंगिक है। आधुनिक मानव सभ्यता विज्ञान एवं तकनीक की दृष्टि से विकसित होने के बावजूद मानसिक तनाव, हिंसा, पर्यावरणीय संकट एवं नैतिक पतन जैसी समस्याओं से जूझ रही है। ऐसी स्थिति में भारतीय मूल्य-परम्परा संतुलित एवं मानवीय जीवन-दृष्टि प्रस्तुत करती है। 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की भावना आज वैश्विक शान्ति एवं सहअस्तित्व का आधार बन सकती है। योग एवं ध्यान मानसिक स्वास्थ्य एवं तनाव-नियन्त्रण में सहायक सिद्ध हो रहे हैं। अहिंसा एवं करुणा की भारतीय अवधारणाएँ विश्व-शान्ति एवं सामाजिक समरसता के लिए अत्यन्त उपयोगी हैं। पर्यावरणीय संकट के संदर्भ में भी भारतीय ऋषियों की प्रकृति-दृष्टि अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। भारतीय संस्कृति ने पृथ्वी, जल, वायु एवं वनस्पतियों को पूजनीय माना। यह दृष्टिकोण आधुनिक पर्यावरणीय नैतिकता के लिए प्रेरणास्रोत बन सकता है। डॉ० राधाकृष्णन के अनुसार भारतीय संस्कृति की विशेषता '**मानव एवं विश्व के मध्य आध्यात्मिक समन्वय**' है। यही समन्वय आज की वैश्विक सभ्यता के लिए अत्यन्त आवश्यक है।

**निष्कर्ष-**

प्रस्तुत अध्ययन से स्पष्ट होता है कि भारतीय ऋषि-ज्ञानपरम्परा मानव-मूल्यों एवं नैतिक शिक्षा की एक समन्वित एवं सार्वकालिक व्यवस्था प्रस्तुत करती है। वेद, उपनिषद्, भगवद्गीता, बौद्ध, जैन एवं योगदर्शन सभी सत्य, अहिंसा, करुणा, आत्मसंयम, सहिष्णुता एवं लोकमंगल जैसे मूल्यों एवं ज्ञान को मानव-जीवन का आधार स्वीकार करते हैं। समकालीन समाज एवं शिक्षा-व्यवस्था में जहाँ ज्ञान का विस्तार हुआ है, वहीं नैतिक मूल्यों का क्षरण भी तीव्र गति से हुआ है। परिणामस्वरूप हिंसा, तनाव, स्वार्थपरता एवं सामाजिक विघटन जैसी समस्याएँ बढ़ती जा रही हैं। भारतीय ज्ञानपरम्परा इन समस्याओं के समाधान हेतु संतुलित एवं मानवीय शिक्षा-दृष्टि प्रस्तुत करती है। नई

शिक्षा नीति-2020 ने भी भारतीय ज्ञानपरम्परा एवं मूल्य-आधारित शिक्षा की आवश्यकता को स्वीकार किया है। इससे स्पष्ट होता है कि आधुनिक शिक्षा को पुनः नैतिक एवं सांस्कृतिक आधार प्रदान करने की आवश्यकता अनुभव की जा रही है। आवश्यक है कि भारतीय ऋषि-ज्ञानपरम्परा में निहित नैतिक मूल्यों को समकालीन शिक्षा-व्यवस्था में प्रभावी रूप से समाविष्ट किया जाए, जिससे भावी पीढ़ी केवल कुशल पेशेवर ही नहीं, बल्कि संवेदनशील, उत्तरदायी एवं नैतिक नागरिक भी बन सके।

**सन्दर्भ ग्रन्थ-**


1. गौड़, पं० रामस्वरूप, अथर्ववेदसंहिता सायणभाष्य एवं हिन्दी अनुवाद सहित, (वि० प्रा०18)
2. उपाध्याय, ब० संस्कृत साहित्य का इतिहास, शारदा निकेतन० 2001
3. अग्रवाल, शैली, सम्पा०, *ईशावास्योपनिषद्,* विमल प्रकाशन मन्दिर, आगरा
4. त्रिवेदी, पं० रामगोविंद, ऋग्वेदसंहिता, पदपाठ, सायणभाष्य एवं हिन्दी व्याख्या सहित, (वि० प्रा०35)
5. भागवत, पं० हरिरघुनाथ, इशादिनवोपनिषद, शांकरभाष्य, (व्रज० प्रा० 68)
6. पतञ्जलि *योगसूत्रम्,* गीता प्रेस, गोरखपुर-273005 (गोविन्दभवन-कार्यालय, कोलकाता का संस्थान) (इक्यावनवाँ पुनर्मुद्रण) सम्वत् -2076
7. जायसवाल, सम्पा० सुरेश, मनुस्मृति, साधना पब्लिकेशन k-4/4, मॉडल टाउन -ii दिल्ली-110009
8. श्रीमद्भगवद्गीता, गीता प्रेस, गोरखपुर, (गोविन्दभवन-कार्यालय, कोलकाता का संस्थान) दो सौ इकतीसवाँ पुनर्मुद्रण, सम्वत् -2075
9. पाठक, डॉ० सर्वानन्द, विष्णुपुराण, (चौ. रा. 2)
10. द्विवेदी, कपिल देव, *वैदिक साहित्य एवं संस्कृति,* विश्वविद्यालय प्रकाशन, पोस्ट बोक्स न० 1194, विशालाक्षी भवन, चौक, वाराणसी 221001(उत्तरप्रदेश, भारत) सप्तम संस्करण-2018
11. तिलक, बाल गंगाधर, *गीता-रहस्य,* तिलक मन्दिर प्रकाशन, पुणे
12. विवेकानन्द, स्वामी, *राजयोग,* अद्वैत आश्रम, कोलकाता
13. Tater, S. R. (n.d.). Education philosophy of Mahatma Gandhi. https://doi.org/xxxx
14. महोपनिषद्, 6.71–73
15. राधाकृष्णन, सर्वपल्ली, *द भगवद्गीता,* जॉर्ज एलेन एण्ड अनविन, 1948
16. राधाकृष्णन, सर्वपल्ली, *द हिन्दू व्यू ऑफ लाइफ,* जॉर्ज एलेन एण्ड अनविन, 1927
17. रामविलास शर्मा, *भारतीय संस्कृति और हिन्दी प्रदेश,* राजकमल प्रकाशन, 2011
18. Ambedkar, B. R. The Buddha and His Dhamma. Siddharth College Publications, Bombay, 1957.
19. हितोपदेश-मित्रलाभ-71 de.wisdomlib.org/hinduism/book/hitopadesha-sanskrit/d/doc276570.html

20. [1] राधाकृष्णन, सर्वपल्ली, *द हिन्दू व्यू ऑफ लाइफ०*

21. [1] उपाध्याय, ब.संस्कृत साहित्य का इतिहास०

22. [1] महाभारत कर्णपर्व 69.58

23. [1] तै०उ०1/11

24. [1] तै०उ०1/11

25. [1] तै०उ०1/11

26. [1] तै०उ०1/11

27. [1] ऋग्वेद०

28. [1] उपाध्याय, ब.संस्कृत साहित्य का इतिहास०

29. [1] तिलक, बाल गंगाधर, *गीता-रहस्य०*

30. [1] राधाकृष्णन, सर्वपल्ली, *द भगवद्गीता०*

31. [1] विवेकानन्द, स्वामी, *राजयोग०*

32. [1] Tater, S. R. (n.d.). Education philosophy of Mahatma Gandhi.

33. [1] महोपनिषद्, 6.71–73

34. [1] राधाकृष्णन, सर्वपल्ली, *द हिन्दू व्यू ऑफ लाइफ०*